श्री विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला ८९

॥ श्रीः ॥

वैदिकसूक्तपञ्चकम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

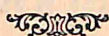
[१. वाचस्पति-सूक्तम्, २. कृषि-सूक्तम्, ३. सहृदयता-सूक्तम्,
४. शुद्धि-सूक्तम्, ५. निर्भयता-सूक्तम्]



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : १

|| श्रीः ||

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
८९



|| श्रीः ||

वैदिकसूक्तपञ्चकम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

संकलयिता एवं अनुवादकः—
आचार्य श्री मधुसूदनप्रसाद मिश्र
अध्यक्ष : अनुसन्धानविभाग, श्रीसोमेश्वरनाथ-
संचालकमण्डल, अरेराज, चम्पारन ।



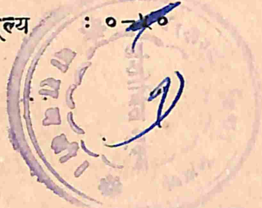
चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा वियाभवन, वाराणसी

मुद्रक : वियाविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०१९

मूल्य : ०-५०



Phone : 3076

मेरा दृष्टिकोण

मैंने इस पुस्तिका को बड़े चाव से पढ़ा है। मन्त्रों के अर्थ और भाष्य में मुझे कहीं भी कोई त्रुटि नहीं जान पड़ी है। हिन्दी में वैदिक-साहित्य-सुधा से जो ये कुछ बूंदें निकाल कर प्रस्तुत की जा रही हैं, इसकी मैं हृदय से सराहना करता हूँ।

जिन सूक्तों का चुनाव किया गया है वे बड़े ही उपयोगी हैं। सनातन धर्म एवं आर्षग्रन्थों के प्रत्येक प्रेमी को इनका मनन करना चाहिए। इनसे प्राप्त होने वाली शिक्षाओं को जीवन में उतारने का प्रयत्न भी करना चाहिए।

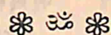
'अरेराज' स्थित श्री सोमेश्वरनाथ संचालक मण्डल के अनुसन्धान-विभाग के संस्थापक श्री महन्त शिवशंकर गिरिजी को मैं शतशः धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से हिन्दी में ऐसे साहित्य की सृष्टि संभव हुई है।

इन सूक्तों के परम बालोपयोगी होने से मैं विश्वविद्यालयों के कुलपतियों से यह अनुरोध करूँगा कि वे अपने यहाँ की परीक्षाओं में इन्हें अवश्य स्थान दिलाने का सत्कार्य करें।

वेदाचार्य काशीप्रसाद मिश्र
प्राध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वैदिकसूक्तपञ्चक-सूची





वैदिकसूक्तपञ्चकम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

(१) वाचस्पति-सूक्तम्

(अथर्ववेद, १ । १)

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ—संसार की सभी वस्तुएँ इक्कीस तत्त्वों से बनी हैं। ये इक्कीसों तत्त्व अपने संपूर्ण रूपों को धारण करते हुए चारों ओर फैल रहे हैं। वाणी का स्वामी (प्राण) आज मुझे उन (तत्त्वों) के भीतर रहने वाले बल को सौंप दे।

मन्त्र-भाष्य—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा, अहंकार ये सात पदार्थ हैं। इन सातों के स्वभाव में सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों के भेद से भिन्नता होने पर इक्कीस तत्त्व हो जाते हैं। तत्त्वों के कुछ कम या अधिक मेलजोल होने से यह नाना रंग-रूप-स्वभाव वाला जगत् आँखों के सामने देखा जाता है। हर एक वस्तु में ये इक्कीसों तत्त्व न्यूनाधिक परिमाण में अवश्य रहते हैं। मनुष्य से लेकर कीड़े-मकोड़ों तक के शरीर में भी ये तत्त्व कुछ कम या अधिक हिस्सों में अवश्य रहते हैं। शरीर में जो बल है, वह इन्हीं तत्त्वों का है। अतः यह मन्त्र इन्हीं इक्कीस तत्त्वों में रहनेवाले बल को अपने शरीर में बढ़ाने के विषय में है। मन्त्र का कहना है कि "इन तत्त्वों का बल मेरे शरीर में आज ही से रहे अर्थात् बल बढ़ाने की चेष्टा कल के लिए छोड़ न दी जाय।" वाचस्पति का एक अर्थ प्राण वायु भी है। प्राण वायु ही वश में कर लिये जाने पर शरीर को बल देता है।

एहि वचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २ ॥

मन्त्रार्थ—हे वाणी के स्वामी (प्राण या आत्मा), तू दिव्य अर्थात् दैवी शक्तियों से भरे हुए मन के साथ बार बार आ । हे सुख के स्वामी, तू निरन्तर आनन्द प्रदान कर और मुझ में जो जो ज्ञान है, वह (मुझ में) अवश्य बना रहे ।

मन्त्र-भाष्य—दैवी और आसुरी संपदायें भगवद्गीता (अ. १६) में बताई गई हैं । मन कभी तो दैवी और कभी आसुरी संपदा से भरपूर हो उठता है । दैवी संपदाओं से मन को परिपूर्ण करने से मनुष्य मुक्ति अथवा सनातन आनन्द का और आसुरी संपदाओं से उसे (मन को) जकड़ देने से बन्धन अर्थात् संसार की ज्वालाओं को सहने का अधिकारी होता है । अतः मन में सदा ही आसुरी संपदाओं से बचने और दैवी संपदाओं से परिपूर्ण होने की भावना बनी रहनी चाहिए । दैवी संपत्ति उन्नति की ओर ले जाती है और आसुरी संपत्ति अवनति की ओर । म आसुरी वृत्तियों से युक्त न होकर दैवी वृत्तियों से भर उठे इसके लिए वाणी के स्वामी आत्मा से प्रार्थना की जानी चाहिए ।

'वसु' शब्द के यों तो अनेक अर्थ हैं, किन्तु यहाँ 'सुख' अर्थ ही अभिप्रेत है । सुख का स्वामी आत्मा है । आत्मा का बल जहाँ पर रहता है, वहाँ सुख-आनन्द, अवश्य बना रहता है ।

दैवी संपदाओं से मन की शुद्धि होने और आत्मिक बल के द्वारा परम सुख की प्राप्ति होने के लिए ज्ञान के बने रहने की भी अत्यंत आवश्यकता है । ज्ञान के बढ़ने से मन दैवी संपदाओं द्वारा शुद्ध हो उठता है । निर्मल मन में आत्मिक बल का उदय होता है और इन दो बातों से जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो उठता है । यही इस प्रार्थना का असली रहस्य है ।

इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ ३ ॥

मन्त्रार्थ—जिस प्रकार धनुष के दोनों छोर प्रत्यञ्चा (डोरी) से

बँधे होते हैं उसी प्रकार यहाँ ही दैवी संपदाओं से भरपूर हमारे मन की यह डोरी–ज्ञान और कर्म इन दो छोरों की–चारों ओर फैली रहे। वाणी का स्वामी आत्मा मन की इस डोरी को (ज्ञान और कर्मों से) बाँधे और मुझ में जो ज्ञान है, वह मुझ में ही बना रहे।

मन्त्र-भाष्य—प्राणियों का जीवन ज्ञान और कर्म को लेकर ही सजीव माना जाता है। यदि जीवन की एक ओर ज्ञान है तो दूसरी ओर कर्म। जब ये दोनों छोर मन की डोरी से बँध जाते हैं, तभी यह लचीला जीवन एक धनुष के समान अपने लक्ष्यों को बींधने में समर्थ होता है। आत्मा ही दैवी शक्तियों से भरे हुए मन की इस डोरी से ज्ञान और कर्म को बाँध सकता है। दैवी शक्तियों से भरपूर मन जिन ज्ञान और कर्मों से बँधा नहीं होता, वे ज्ञान और कर्म किसी प्रत्यञ्चाहीन धनुष की नोंक के समान निरर्थक रहते हैं। जीवन में सब प्रकार की उन्नति तभी हो सकती है, जब लक्ष्य भेदन करने वाले शिकारी की तरह यह आत्मा ज्ञान और कर्मों को मन से बाँधकर रखे। और इसके लिए अपने भीतर ज्ञान की वृद्धि की जानी चाहिए।

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि माश्रुतेन विराधिषि ॥ ४ ॥

मन्त्रार्थ--वाणी के पति आत्मा को तुमने बुलाया है। वह (वाणी का पति) आत्मा हमें बुलावे। ज्ञान से हमारा संगम हो अर्थात् ज्ञान से हम मिल जायँ। मैं ज्ञान से अलग न होऊँ।

मन्त्रभाष्य--मन्त्र के 'संगमेमेहि' इस पद से यह तात्पर्य है कि ज्ञान की जो धारा बह रही है उसी में अपने जीवन की धारा मिला दी जाय। मन्त्र का पूर्वार्द्ध बतलाता है कि हम आत्मा से जब प्रार्थना करते हैं तो वह हमें अपनी ओर बुलाता है। अर्थात् अपना बल हमें दे डालता है। आत्मिक बल की प्राप्ति होती रहे इसके लिए आवश्यक है कि हमारा ज्ञान का भाण्डार भरता रहे और हम कभी ज्ञान के विरोधी बन कर न रहें।

---

(२) कृषि-सूक्तम्

(अथर्ववेद ३।१७; ६।३०; तथा १०।१०१)

सीरा युंजन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ—(जब यज्ञ करने वाला) देवताओं के लिए सुख देने वाले यज्ञ की इच्छा करता है तो विद्वान लोग (खेती के लिए) हल चलाते हैं। वे बुद्धिमान् जन जुओं को अलग से बैलों के कंधों पर फैलाते हैं।

मन्त्र-भाष्य--'सुम्नयौ' का अर्थ 'बैलों की जोड़ी' भी होता है। इस लिए उक्त मन्त्र का दूसरा अर्थ यह होता है--"देवताओं के लिए सुख देने वाले अन्नों को प्राप्त कराने वाले बैलों की जोड़ी को विद्वान् लोग (खेती के लिए) हल में नाधें।" शेष अर्थ ऊपर के अनुसार ही है।

जो ज्ञानी जन खेती के लिए हल चलाते हैं, बैलों को जोतते हैं, उनका उद्देश्य "अपना क्षुद्र स्वार्थ न होकर देवताओं को प्रसन्न करने वाला यज्ञ अर्थात् जनता के कल्याण के लिए उस अन्न का त्याग" होना चाहिए। दूसरे प्रकार से हम यों समझ लें कि ज्ञानी किसान खेती के लिए हल चलाते हैं और उससे उत्पन्न होने वाले नाजों से प्राणियों की भलाई होती है और इससे देवता सुखी होते हैं।

युनक्त सीरा वियुगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२॥

मन्त्रार्थ—(हे किसानो, जुओं के साथ) हल नाधो और जुओं को बैलों के कंधों पर फैलाओ। (जुताई के बाद धरती) जब अङ्कुर उत्पन्न करने योग्य हो जाय, तब इस (भूमि) में बीजों की बोवाई करो और अन्नों की डाँठें (श्नुष्टिः) जो कि अपनी बालियों के भार से युक्त हैं हमारे यहाँ होवें और खड़ी फसलों के पककर तैयार होने के बाद हँसुवे उन (डाँठों) के अधिक समीप जावें।

मन्त्र-भाष्य—इस मन्त्र में 'कृते योनौ' से यह मतलब है कि जब भूमि खूब जोताई के बाद बीजों के बोने पर अङ्कुर उत्पन्न करने योग्य

हो जाय, तभी बीज बोये जायं। आशय यह है कि खेतों की जोताई भली भाँति होनी चाहिए और खेतिहर जिसे 'नाक' कहते हैं उस पर पूरा ध्यान रहना चाहिए।

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु। उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ ३ ॥

मन्त्रार्थ—वज्र जैसी तेज धार वाले (हल की नोंक में लगे हुए भूमि को फाड़नेवाले लोहे के) फाल से युक्त हल किसान को सुख देने वाला है। (धान आदि अन्नों को उत्पन्न करने के कारण) इसकी मूंठ या परिहत सोम याग को पूर्ण कराने वाली है। ऐसा हल गाय, भेड़, चलने में समर्थ रथ के वाहन (घोड़े और बैलों) को तथा परिपुष्ट अङ्गोंवाली प्रथम वय की कन्या को संपादन करे (अर्थात खेती से अन्न उत्पन्न होने पर गाय, भेड़, घोड़े बैल और व्याहने योग्य कन्या इन सभी का पालन होता है।)

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाभिरक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ४ ॥

मन्त्रार्थ—इन्द्र (वृष्टि के देवता) हल की रेखा (हराई) को ग्रहण करें। पूषा (सबको पालने-पोसने वाले सूर्य) उन रेखाओं (हराइयों) को अगल-बगल से पालें। (हल से खींची हुई) वह (रेखा) जल से भरी हो कर आने वाले हरेक वर्ष में हमें मनचाहे फल दिया करे।

मन्त्र-भाष्य--इन्द्र वृष्टि का देवता है। किसान जब अपने हल से हराई खींच देता है, तब धरती का हाल (नमी) सूखने लगता है। वैसी स्थिति में किसान चाहता यह है कि हल से उखड़ी हुई मिट्टी अगल बगल से खूब सूख जाय और इस प्रकार सूर्य-किरणों द्वारा प्राप्त होने वाली खाद उन मिट्टियों को मिल जाय और बाद में वर्षा की झड़ी शुरू होने पर उन मिट्टियों की खोई हुई नमी पुनः लौट आवे। अथवा (क्वार-कातिक में) यह चाहता है कि ये मिट्टियाँ ऊपर से तो सूर्य से ताप द्वारा खाद इकट्ठी करती रहें और नीचे वृष्टि का देवता इन्द्र इनके हाल को बनाये रहे। बाद में (अङ्कुर उग जाने पर) उन हराइयों में जल

भर देने (सींच देने) पर उनके द्वारा हमें मनचाहे फल मिलते रहें।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहाम् ।
शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५॥

मन्त्रार्थ--(हल के) उत्तम फाल हमें सुख देने के लिए भूमि को अच्छी तरह खोदे। किसान बैलों के पीछे आनन्द से चलें। हे वायु और सूर्य देवताओ तुम हमारी हवि से संतुष्ट होकर इस पुरुष के लिए (धान, जौ आदि) ओषधियों (फसलों) को उत्तम फलों से युक्त करो।

मन्त्र-भाष्य--मन्त्र में 'फाल' के लिए 'सु' (उत्तम) यह विशेषण दिया गया है। इससे यह बात जान पड़ती है कि हल के फलों के उत्तम होने से ही भूमि की अच्छी जोताई संभव है। 'तुदन्तु' यह क्रिया है। इसमें 'वि' उपसर्ग जोड़ा गया है। इससे यह अर्थ जान पड़ता है कि भूमि की जोताई भली भाँति से होनी चाहिए। किसान बैलों के पीछे चलने में आनन्द का अनुभव करे और खेती से पूरा नाज पैदा कर सुख से रहे।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिंगय ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ--बैलों की जोड़ी सुख से रहे। किसान सुखपूर्वक जोतें। हल सुख से वहें। हल की रस्सियाँ सुख से बाँधी जायँ। चाबुक सुख से प्रेरित किये जायँ।

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ७ ॥

मन्त्रार्थ--हे वायु और सूर्य देवताओ, इस क्षेत्र में हमारी हवि का (आप लोग) सेवन करें। और (आप दोनों ने) आकाश में जिस जल का निर्माण किया है, उससे इस जोती हुई पृथिवी को सींचते रहें।

मन्त्र-भाष्य--आशय यह है कि सूर्य की किरणों द्वारा वायु की सहायता से आकाश में मेघ बनते रहें और उन मेघों से वृष्टि होकर हमारी खेती की सिंचाई होती रहे।

---

(३) सहृदयता-सूक्तम्

(अथर्ववेद ३।३०)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ--हे झगड़ने वाले मनुष्यो, मैं तुम्हारे लिए सहृदयता, परस्पर के प्रेम भाव और निर्वैरता (उपस्थित) करता हूँ। इस लिए तुम एक-दूसरे के ऊपर ऐसी प्रीति करो जैसी नये उत्पन्न बछड़े पर गौ करती है।

मन्त्र-भाष्य--हृदय की समानता परस्पर का प्रेम भाव और हृदय से वैरभाव को दूर रखना मनुष्य में ये तीनों गुण अत्यन्त आवश्यक हैं। इन्हीं गुणों से मनुष्य-समाज का कल्याण होना सम्भव है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ २ ॥

मन्त्रार्थ--पुत्र पिता के अनुकूल कार्य करनेवाला होता हुआ माता के साथ उत्तम मन से रहने वाला होवे। पत्नी पति से मीठा और शान्तियुक्त वचन बोले।

मन्त्र-भाष्य--पिता जिस सत्य का आचरण करता है पुत्र को भी उसी सत्य का आचरण करना उचित है। जो सत्य है, वही व्रत का स्वरूप है। 'एतत्खलु वै व्रतस्य रूपं यत्सत्यम्' (शत. १२।८।२।४)। उसी प्रकार पुत्र द्वारा माता के प्रति शुद्ध मन से व्यवहार किया जाना उचित है।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३ ॥

मन्त्रार्थ--भाई (धन का बँटवारा आदि कारणों को लेकर) अपने भाई का अप्रिय न करे। अथवा बहन, बहन से द्वेष न करे इन सभी (भाई-बहनों) की गति और कार्य समान (एक-से) होवें और ये परस्पर कल्याणकारी बातचीत करें।

मन्त्र-भाष्य--वेद भगवान् का यह आदेश यदि घर-घर पहुँच जाय, और लोग इसे माथे पर धारण कर इसका आदर करने लग जाँय, तब संसार में सर्वत्र मङ्गल ही मङ्गल देखने को मिले। पारिवारिक अथवा

सामाजिक भाई-चारे में जो आज विद्वेष का रोग फैल रहा है उसकी एकमात्र दवा इस मन्त्र के अनुसार चलना ही है।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ ४॥

मन्त्रार्थ--जिससे देवता लोग विमति (विरुद्ध मति) को नहीं प्राप्त करते और परस्पर विद्वेष (वैर) भी नहीं करते हैं उस एक मति के कराने वाले ज्ञान अर्थात् परस्पर के प्रेमभाव को हम तुम्हारे घर के पुरुषों के लिए (उपस्थित) करते हैं।

मन्त्र-भाष्य—यह एक मति और प्रेम भाव का संदेश है जो वेद भगवान् की ओर से हमारे लिए दिया गया है। घर के सब लोगों में इस ढंग का ज्ञान दिया जाय कि उनमें कभी विरोध पनपने ही नहीं पावे। और उनमें एक विचार बना रहे।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
सं राधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः सं मनसस्कृणोमि॥ ५॥

मन्त्रार्थ--जेठाई-छोटाई का ध्यान रख कर बर्ताव करो। चित्त को समान बनने दो और कार्य की सिद्धि तक समान कार्य करो। तुम कभी अलग मत होओ अर्थात् आपस में विरोध न करो। एक दूसरे के प्रति शोभन एवं प्रिय वचन बोलते हुए तुम आओ। हे मनुष्यो, मैं भी तुम्हें कामों में साथ-साथ लगे और समान मन से युक्त करता हूँ।

मन्त्र-भाष्य--छोटे बड़ों का आदर करें और बड़े छोटों पर प्यार। कार्य जब तक पूरा न हो जाय तब तक प्रयत्न चलता रहे। कार्य एक हो अर्थात् अनेक कार्यों में एक ही समय शक्ति का अपव्यय न किया जाय और उस एक कार्य में चित्त की लगन होनी चाहिए। परस्पर विरोध न हो। मुंह से सदा मीठे वचन निकले इस प्रकार का बर्ताव करता हुआ जो परमात्मा के निकट आता है, उसकी सहायता स्वयं परमात्मा करते हैं।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ—(आपस में प्रेमभाव की इच्छा रखनेवाले) आप लोगों का प्याऊ (पानी पिलाने का स्थान) समान हो। आपका भोजन भी समान हो अर्थात् आप सभी पारस्परिक प्रेम के अधीन रहते हुए एक स्थान पर रह कर अपने अन्न और पान का उपभोग करें। इस लिए मैं तुन्हें एक स्नेहपाश में बाँधता हूँ जैसे (चक्कों के) अरे चारों ओर रहते हुए भी एक नाभि (मुँड़बार के बीच के भाग) का आश्रय लेकर रहते हैं, वैसे ही तुम सभी मिल कर अग्नि की पूजा करो।

मन्त्र भाष्य—आपस में प्रेमभाव बनाये रखने के लिए एक ही स्थान पर भोजन-पान की व्यवस्था रखना परम आवश्यक है। इससे सम्मिलित कुटुम्ब की भावना दृढ़ होती है। मिलजुल कर उपासना करने से व्यक्तिगत लाभ तो होते ही हैं, सामूहिक रूप से भी पारस्परिक प्रेमभाव की वृद्धि होती है।

सध्रीचीनान् वः सं मनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसौ वो अस्तु ॥ ७॥

मन्त्रार्थं—मैं तुम लोगों को एक काम के करने में साथ साथ प्रवृत्त समान मनवाला एवं एक खान-पानवाला करता हूँ। इसी वशीकरण द्वारा तुम सबको मैं वश में करता हूँ। अमृत की रक्षा करनेवाले देवों के समान सायं प्रातः आप के चित्त की प्रसन्नता होवे।

मन्त्र-भाष्य—अपने भीतर (अन्य व्यक्तियों के लिए) सहायता की भावना रखनी चाहिए। व्यक्ति की सहायता से समाज बड़े से बड़े कामों को पूरा कर लेता है। उक्त संस्कारों से मन को संपन्न बना लेना चाहिए। खान-पान की व्यवस्था एक होनी चाहिए। यह नहीं कि कुछ लोगों के भोजन में तो विशिष्टता हो और शेष लोग उन विशिष्टताओं से वञ्चित रह जायँ। मन को सदा प्रसन्न बनाना चाहिए। तभी अमृतमय सुख की प्राप्ति होगी।

---

(४) शुद्धि-सूक्तम् (कुष्माण्डी-सूक्तम्)

(शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय २०, मन्त्र १४-१७)

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ--हे दीप्तिसंपन्न देवताओ, हमने देवताओं के प्रति जो कुछ अपराध किये हैं, उन अपराधों से अग्निदेव (अथवा परमेश्वर) हमें मुक्त करें। (केवल उन्हीं पापों से नहीं, बल्कि) सभी पापों से मुक्त करें।

मन्त्र-भाष्य--मनुष्य से जान बूझकर अथवा अनजाने अपराध हो ही जाते हैं। किन्तु अपराध कर चुकने के बाद यदि मनुष्य को अपने किये कर्मों के लिए हार्दिक पश्चात्ताप हो और वह सच्चे मन से किसी देवता या भगवान् के निकट प्रार्थना करे तो उन अपराधों से मुक्ति मिल जाना असम्भव नहीं है। आत्मशुद्धि के लिए यह प्रार्थना बेजोड़ है।

यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

मन्त्रार्थ--यदि दिन अथवा रात में हमने पाप किये हैं, तो उन पापों से और दूसरे सब पापों से वायु देवता हमें मुक्त करें।

मन्त्र-भाष्य--इस मन्त्र में चौबीस घंटों में किये गये पापों का सिंहावलोकन कर उनसे मुक्ति मिलने के लिए प्रार्थना की गई है। यदि उक्त मन्त्रों और आगे वाले मन्त्र में अग्नि, वायु और सूर्य भौतिक अग्नि, वायु और सूर्य हैं, तब भी यह मानना ही पड़ेगा कि उन भौतिक अग्नि, वायु और सूर्य के सेवन से अन्तःकरण के कलुष अवश्य ही दूर होते है।

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

मन्त्रार्थ--यदि जागते अथवा सोते हुए हमने पाप किये हैं तो उन पापों से और दूसरे सब पापों से सूर्य देवता हमें मुक्त करें।

मन्त्र-भाष्य—इस मन्त्र में ज्ञान और अज्ञान में किये गये पापों से मुक्ति के लिए प्रार्थना है।

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं
यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ ४ ॥

मन्त्रार्थ--गाँव में, वन अथवा सभा के विषय में, इन्द्रियों के बारे में, शूद्र (सेवक) एवं अर्य (स्वामी अथवा वैश्यों) के विषय में हमने जो पाप किये हैं किंवा हम (यजमान-दम्पतियों) में किसी एक ने यदि अपने द्वारा धर्म का लोप-रूप कोई कार्य किया है, तो उस पाप के नाश करने वाले (हे वरुण,) तुम हो ।

मन्त्रभाष्य--जिस ग्राम में मनुष्य जन्म लेकर बड़ा होता है, जिस वन में उसके जीवन-निर्वाह की सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं और जिस सभा में उसके अपने लोगों के विषय में विचार किये जाते हैं, स्वभावतः उन ग्रामों, उन वनों और उन सभाओं के विषय में वह पक्षपात का दोषी हो जाता है । इसी प्रकार इन्द्रियों के चलते दूसरों का अपवाद या दूसरों की स्त्रियों को बुरी दृष्टि से घूरना ये पाप हो ही जाते हैं । कभी कभी अपने शूद्रों (सेवकों) और अर्यों (स्वामियों अथवा वैश्यों) को लेकर भी पाप हो जाते हैं । इन सभी पापों से बचाने की प्रार्थना इस मन्त्र में हैं ।

---

(५) निर्भयता-सूक्तम्

(अथर्ववेद २-१५, १-६)

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ १ ॥

मन्त्रार्थ--जिस प्रकार द्युलोक और पृथिवी निर्भय रहते हैं और इसी लिए किसी से हिंसित नहीं होते इसी प्रकार हे मेरे प्राण, तुम भी मत डरो ।

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ २ ॥

मन्त्रार्थ--जिस प्रकार दिन और रात डरते नहीं और इसी लिए (किसी से) हीन नहीं होते, इसी प्रकार हे मेरे प्राण तुम मत डरो ।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ३ ॥

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा डरते नहीं हैं, इसी लिए हानि को नहीं प्राप्त करते हैं, वैसे ही हे मेरे प्राण, तुम मत डरो ।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ४ ॥

मन्त्रार्थ—जैसे ज्ञान और शौर्य (अथवा ज्ञानी और शूर-वीर) डरते नहीं हैं इसी लिए उनकी कोई हानि नहीं हो पाती, इसी प्रकार हे मेरे प्राण, तुम मत डरो ।

यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण, मा विभेः ॥ ५ ॥

मन्त्रार्थ--जैसे सच और झूठ ये कभी किसी से भय नहीं खाते इस लिए विनष्ट नहीं होते (अर्थात् सच सच ही रहता है और झूठ झूठ ही) इसी प्रकार हे मेरे प्राण, तुम मत डरो ।

यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ--जैसे अतीत और अनागत डरते नहीं है, इस लिए विनष्ट नहीं होते, इसी प्रकार हे मेरे प्राण, तुम मत डरो ।

मन्त्र-भाष्य--भय ही नाश का कारण है । अतः यह सूक्त प्राणों की निर्भयता का उपदेश देनेवाला है । भय से शक्ति घट जाती और शरीर निर्बल हो जाता है । डरपोक व्यक्ति का मन भी कमजोर पड़ जाता है । मनकी कमजोरी शारीरिक शक्ति को बढ़ने नहीं देती है ।

यह सूक्त सदा ही मनन करने योग्य है । सूक्त का कहना है कि पृथिवी, द्युलोक, सूर्य, चन्द्रमा आदि इसी लिए प्रबल हैं कि वे डरते नहीं हैं । यदि इनमें भय होता तो वे अपने स्थान पर कभी कायम नहीं रहते । इस लिए जो प्राणी निर्भय होते हैं वे ही शक्ति संपन्न होते हैं । डरने वाले का बल क्षीण हो जाता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति निडर रह कर अपना-अपना कार्य करे ।

प्रबन्धरत्नाकरः

(शास्त्री, आचार्य तथा बी० ए०, एम० ए० के छात्रों के लिये शताधिक परीक्षोपयोगी निबन्धों का संग्रह)

डॉ० रमेशचन्द्र शुक्ल

संस्कृत साहित्य—काव्य, नाटक, गद्यकाव्य आदि से सुसमृद्ध होते हुए भी निबन्धों की दृष्टि से अभी अपुष्ट है। विशेषतया, नवीन विषयों के ऊपर लिखे हुए विचारगर्भित निबन्धों का बड़ा ही अभाव था। निबन्ध-रचना के लिए भाषा के ऊपर अधिकार जितना अपेक्षित है उतना ही ऊहापोह के साथ विचार पटुत्व भी। इसलिए आज के पल्लवग्राहि विद्वत्ता के युग में प्रबन्धरचना विद्यार्थियों के के लिए बहुत कठिन हो जाती है। विद्यार्थियों की सहायता के लिए आवश्यकतानुसार निबन्ध-ग्रन्थ भी सुलभ नहीं हैं। इस अभाव की पूर्ति के लिए विद्वान् लेखक ने प्रबन्धों का यह संग्रह प्रस्तुत किया है, जिसमें प्राचीन एवं नवीन सुललित भाषा में सभी विषयसम्बन्धी लिखित सौ से ऊपर निबन्ध हैं १६-५०

नवीन-अनुवाद-चन्द्रिका

डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी

इस संस्करण की विशेषता—

छात्रों को अनुवाद करने का नियम नवीन वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है, और तदनुसार अनुवादार्थ अभ्यास भी दिए गए हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ के १ से १८ सोपानों में अनुवाद प्रक्रिया को अथ से इति तक समझाया गया है। संस्कृत भाषा के ज्ञान के लिए अनिवार्य सम्पूर्ण व्याकरण, अनुवाद और अभ्यासों के द्वारा अत्यन्त सरल रीति से समझाया गया है। संस्कृत भाषा में पत्र-लेखन, प्रस्ताव, वाग्व्यवहार के प्रयोग एवं संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी अनुवाद, अंग्रेजी लोकोक्तियों के संस्कृत पर्याय एवं अंग्रेजी-संस्कृत शब्दावली भी प्रस्तुत की गयी है। अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करने का विशेष अभ्यास कराया गया है। अन्त में रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि समझायी गयी है तथा आज तक के प्रश्नपत्र भी दिये गये हैं। इस ग्रन्थ का ठीक अभ्यास हो जाने पर छात्र निःसन्देह शुद्ध रूप से संस्कृत लिख सकता है ३-००

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१